Dhananjay Vasudeo Dwivedi

सामाजिक व्यवस्था → महाभारतकालीन समाज में वर्णव्यवस्था सम्यक् रूप से प्रतिष्ठित थी। चातुर्वर्ण की उत्पत्ति के विषय में ऋग्वेद की ही तरह महाभारत में भी परमपुरुष से उसका उत्पन्न होना बताया गया है -

"ब्राह्मणो मुखतः सृष्ट ब्राह्मणो राजसत्तम।
बाहुभ्यां क्षत्रियः सृष्ट उरुभ्यां वैश्य एव च॥
वर्णश्चतुर्थः संभूत पद्भ्यां शूद्रो विनिर्मितः॥"

ब्राह्मणों की सर्वोच्चता और महानता भूमिचर देवता के रूप में थी - भूमिचराः देवा (शान्तिपर्व/39/1)। समाज में उसकी प्रतिष्ठा उसके त्याग और तपस्या के कारण थी। धनसंग्रह ब्राह्मण के लिए वर्जित था (अनुशासनपर्व/61/19) ब्राह्मण में शम, दम, तप, शौच, शान्ति, आर्जव, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिक्य होना चाहिए -

"शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम॥"

क्षत्रियवर्ण शासक वर्ग, संरक्षक वर्ग और योद्धा वर्ग था। ~~चार~~ चातुर्वर्ण की सुरक्षा का दायित्व क्षत्रियों पर ही था। शौर्य, तेज, धृति, दाम्य, युद्ध से अपलायन, दान और ईश्वरभाव क्षात्रकर्म के स्वाभाविक लक्षण थे -

"शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रकर्मस्वभावजम॥"

महाभारत से विदित होता है कि ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों को पारस्परिक सहयोग और सद्भावना से कार्य करने के लिए निर्दिष्ट किया गया था। दोनों की प्रतिस्पर्धा

Scanned with CamScanner

और प्रतिद्वन्द्विता से समाज का क्षय होता है, ऐसी मान्यता उस काल में थी (शान्तिपर्व/73/2-14)।

वैश्य वर्ण के लिए कहा गया है कि वह समाज का ऐसा वर्ग था जिसने अध्ययन और यजन के कर्मों को छोड़कर कृषि-कर्म तथा गो-पालन-वृत्ति का अनुसरण किया। इस वर्ग का प्रधान उद्देश्य था धनार्जन करना - "वैश्यो धनार्जनं कुर्यात्" (~~शान्तिपर्व~~ उद्योगपर्व/132/30)। समाज को आर्थिक दृष्टि से सबल और सुव्यवस्थित करने के लिए वैश्य वर्ग की आवश्यकता थी, जो अपने अथक परिश्रम और लगन से समाज के आर्थिक जीवन को सुदृढ़ करता था।

शूद्र वर्ण का प्रधान धर्म अन्य वर्णों की सेवा करना था। परिचर्या वृत्ति ही उसकी प्रधान वृत्ति थी। वे शिक्षा प्रदान करने के अधिकारी नहीं माने गए हैं। शूद्र अपने सत्कर्मों और सदाचरणों के कारण समाज में आदृत थे। युधिष्ठिर ने अपने राजसूय यज्ञ में शूद्र प्रतिनिधियों को आमन्त्रित किया था (सभापर्व/33/41)

आश्रम व्यवस्था → महाभारतकार ने चतुराश्रम व्यवस्था का वर्णन किया है। ये हैं- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास।

मनुष्य के बौद्धिक और शिक्षित जीवन के निमित्त ब्रह्मचर्य आश्रम की व्यवस्था की गई है। महाभारत के अनुसार ब्रह्मचर्य आश्रम में रहने वाले ब्रह्मचारी को अन्तर्- बाह्य की शुद्धि, वैदिक संस्कार और व्रत नियमों का पालन करते हुए अपने मन को वश में करना चाहिए। ब्रह्मचारियों को सन्ध्योपासन, सूर्योपासन और अग्निहोत्र के द्वारा अग्निदेव की आराधना करनी चाहिए। तन्द्रा और आलस्य को त्यागकर प्रतिदिन गुरु को प्रणाम करना और वेदों के अभ्यास तथा श्रवण से अपनी अन्तरात्मा को पवित्र करना चाहिए। गुरु जो कुछ कहें, जिसके लिए संकेत करें और जिस कार्य के निमित्त

Dhananjay Vasudeo Dwivedi

Scanned with CamScanner

आज्ञा दे उसका सहर्ष पालन करना चाहिए।

महाभारत में गृहस्थाश्रम को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। इसे अन्य आश्रमों से उत्कृष्ट माना गया है (शान्तिपर्व/12/6)। दूसरी स्त्री के साथ सम्पर्क न करना, अपनी पत्नी तथा घर की रक्षा करना, न दी गई वस्तु को न लेना, मधु का सेवन न करना तथा मांस न ग्रहण करना- ये पाँच प्रकार के गृहस्थ के कर्म सुख प्रदान करने वाले थे। ~~यहाँ यह भी कहा गया है कि विधिपूर्वक किए गए यज्ञों~~ से पितृगणों गृहस्थ के लिए यज्ञ करना आवश्यक समझा जाता था। पापों से छुटकारा के लिए पञ्चमहायज्ञों का विधान किया गया है। ये हैं- ब्रह्म, पितृ, देव, भूत तथा नृ। वेद का अध्ययन-अध्यापन करना ब्रह्म यज्ञ था, तर्पण करना पितृयज्ञ, हवन करना देवयज्ञ, बलिवैश्यदेव करना भूतयज्ञ तथा अतिथियों का भोजन-सत्कार करना नृयज्ञ था।

आयु के तीसरे भाग में
गृहस्थ के बाद वानप्रस्थ आश्रम आरम्भ होता था। जब मनुष्य अपने समस्त गार्हस्थ कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों को सम्पन्न कर लेता था और उससे मुक्त हो जाता था तब वह सांसारिक मोह-माया को त्यागकर वानप्रस्थ आश्रम में प्रविष्ट होता था। वानप्रस्थ जीवन में मनुष्य आध्यात्मिक उत्कर्ष तथा समस्त भौतिक स्पृहाओं से मुक्ति पाने का उपक्रम करता था। महाभारत में यह भी कहा गया है कि वानप्रस्थी को वन में उत्पन्न होने वाली वस्तुएं खानी चाहिए, भूमि पर शयन करना चाहिए, वल्कल धारण करना चाहिए, देवता और अतिथि का सत्कार करना चाहिए और अग्निहोत्र सम्पन्न करना चाहिए। ऐसी मान्यता थी कि ऐसा करने से देवलोक की प्राप्ति होती थी।

जीवन का अन्तिम भाग, पचहत्तर वर्ष की अवस्था से सौ वर्ष अथवा इसके बाद तक, संन्यास आश्रम के अन्तर्गत रखा गया था। संन्यासी के लिए यह अनिवार्य था कि वह क्रोध-मोह का परित्याग करके अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान नियमों का पालन करे (शान्तिपर्व/244/30)।

Scanned with CamScanner

पुरुषार्थचतुष्टय की साधना → महाभारत में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को पुरुषार्थ चतुष्टय की श्रेणी में रखा जाता था। महाभारत का कथन है कि इन्हीं पुरुषार्थों के बल पर व्यक्ति अपने समस्त कार्य सोत्साह करता है तथा जीवन, जगत और परमात्मा के प्रति अपनी कर्मनिष्ठता ज्ञापित करता है। महाभारत के अनुसार धर्म वही है, जिससे दूसरे को कष्ट न पहुँचे, बल्कि लाभ हो। जीवन में भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिए अर्थ - इस पुरुषार्थ की साधना पर बल दिया गया है। अर्थ प्राप्ति के साथ-साथ उसका सम्यक् दान करना भी अपेक्षित माना गया है। काम मानव जीवन की सुखद और सहज अनुभूति से सम्बद्ध है, जिसके माध्यम से वह अपनी कामजनित प्रीतिरूप भावना और वृत्तियों की तुष्टि करता है। विवाह और सन्तानोत्पत्ति इसी के आधार पर सम्भव है। द्रव्य - अर्थ की संवृद्धि से होनेवाला आनन्द भी काम के अन्तर्गत आता है (वनपर्व / 33/30)। यह भी कहा गया है कि काम मन और हृदय का वह सुख है जो इन्द्रियों से निःसृत है (वनपर्व / 37/8)। जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है। मोक्ष का सम्बन्ध आत्मा और परमात्मा से तथा मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन से है। यह आध्यात्मिक जीवन का अन्तिम और उच्चतम आदर्श माना गया है।

कृष्णद्वैपायन वेदव्यास की स्पष्ट उक्ति है कि धर्म का परित्याग किसी भी दशा में, भय से, लोभ से, कभी नहीं करना चाहिए। धर्म शाश्वत है, चिरस्थायी है -

"न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
धर्मो नित्यः सुख-दुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥"

Scanned with CamScanner

महाभारतकालीन राजनीतिक व्यवस्था →

महाभारतकार एक ऐसे स्वर्णयुग की कल्पना करता है जब न राज्य था और न राजा, न दण्ड था और न दण्ड देने वाला। अपनी सहज धर्म-भावना से ही सब मनुष्य सुख-शान्ति और नीति के साथ रहते थे —

"न राज्यं न राजासीन्न दण्डो न दाण्डिकः।
धर्मेणैव प्रजास्सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम्॥"
(शान्तिपर्व/59/14)

यह ~~अवस्था~~ सृष्टि के आरम्भ की स्थिति है। अनन्तर धर्म का ह्रास हुआ और राजा की आवश्यकता जान पड़ी। यहीं से राजतंत्र का उदय हुआ। प्रजा ने एक व्यक्ति विशेष को अपने ऊपर राज्य करने का अधिकार इसी शर्त पर दिया कि वह धर्म और न्याय के साथ शासन करेगा।

महाभारत का कथन है कि भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में राजा अग्निरूप, मृत्युरूप, यमरूप और कुबेररूप होता है (शान्ति/68/41-47)। महाभारत एक स्थान पर स्पष्ट कहता है कि जो धर्म समन्वित हो उसी को राजा समझना चाहिए (शान्ति/90/14)। प्रजा की हितसाधना ही राजा का ध्येय होता था (शान्ति/118/3)। राजा का प्रधान धर्म लोकरञ्जन था (शान्ति/57/11)। एक स्थान पर कहा गया है कि जो धर्मात्मा होता है वह कर्ता होता है और जो धर्महीन होता है वह विनाशक होता है (शान्ति/91/9)। महाभारतकार ने प्रजा का उत्पीड़न करने वाले राजा की हत्या तक कर डालने तक की अनुमति दी है —

"अरक्षितारं हर्तारं विलोप्तारमदायकम्।
तं स्म राजकलिं हन्युः प्रजा सम्भूय निर्घृणम्॥

Dhananjay Vasudeo Dwivedi

Scanned with CamScanner

राज्याभिषेक के समय राजा को प्रतिज्ञा लेनी पड़ती थी कि मैं मन, कर्म और वचन से धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करूँगा और कभी भी स्वेच्छाचारिता से काम नहीं लूँगा।

राजा स्वच्छ स्वेच्छा से निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र नहीं था। उसे अमात्यों का परामर्श मानना पड़ता था। इस आर्षकाव्य में कहा गया है कि जिस प्रकार ब्राह्मण वेदों पर आश्रित होता है उसी प्रकार राजा अपने मन्त्रियों पर निर्भर है।

राजा के पास एक सुसंगठित सेना होती थी जो आन्तरिक शान्ति बनाए रखती और देश की बाह्य आक्रमण से रक्षा करती थी। सेना में पदाति, अश्वारोही, गजारोही और रथी होते थे। इन्हीं चार अंगों के कारण इन्हें चतुरंगिणी कहा जाता था। राजा ही सेना का सर्वोच्च सेनापति था। इसके अतिरिक्त सेना का एक प्रधान भी होता था। उसके साथ-साथ सेना में अन्यान्य छोटे बड़े अधिकारी भी होते थे।

राजतंत्र के अतिरिक्त महाभारत में गणतंत्रों का उल्लेख प्राप्त होता है। इनकी संख्या ६ है और नाम अग्रलिखित हैं- अन्धक, वृष्णि, यादव, कुकर और भोज। गणतन्त्र की उन्नति के लिए जिन बातों की आवश्यकता है उनका उल्लेख भीष्म पितामह इस प्रकार करते हैं- गण के लोगों को आपस में मेल रखना चाहिए, बड़े लोगों को तुरन्त ही फूट का अन्त कर देना चाहिए, शासकों पर विश्वास रखना चाहिए, कोष भरा रखना चाहिए और सबसे बड़ी बात यह है कि एकता रखनी चाहिए।

शासन का स्वरूप जो भी हो राजा के मुख्य कार्य दो ही थे- धर्म की व्यवस्था और सञ्चालन तथा प्रजा की रक्षा। यदि राजा प्रजा का पालन सम्यक् रीति से नहीं करे, तो प्रजा ही एक दूसरे को न खा डालेगी, प्रत्युत वेदत्रयी का अस्तित्व लुप्त हो जायेगा और विश्व को धारण करने वाला धर्म ही रसातल में डूब जायेगा-

Dhananjay Vasudeo Dwivedi

Scanned with CamScanner

महाभारत का महत्त्व→ महाभारत के महत्त्व पर विस्तारपूर्वक चर्चा करने से पूर्व आचार्य कपिलदेव द्विवेदी की प्रशस्ति का उल्लेख करना समीचीन होगा –

"रामायण के पश्चात् महाभारत ही सांस्कृतिक दृष्टि से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। संस्कृति और सभ्यता का महाभारत में जितना विशुद्ध चित्रण मिलता है, उतना अन्यत्र किसी भी ग्रन्थ में दुर्लभ है। महाभारत एक नहीं, अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इसमें विभिन्न संस्कृतियों का सम्मिश्रण, राष्ट्रीय भावना का उदय, आसुरी प्रवृत्तियों के दमन का प्रयास, भौगोलिक अनेकता में एकता, जीवनदर्शन की व्यावहारिक दृष्टि से व्याख्या, अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता, ~~महिलाओं की~~ राजनीति-कूटनीति-युद्धनीति-दण्डनीति और अनीति का व्यावहारिक प्रदर्शन, राजधर्म का सर्वाङ्गीण निरूपण, आख्यान साहित्य का अक्षय कोष, नीतिशास्त्र की बहुमूल्य निधि एवं चतुर्वर्ग की सभी समस्याओं का समाधान है। इसमें एक ओर राजधर्म का उपदेश है तो दूसरी ओर मोक्ष धर्म का, एक ओर अशान्ति है तो दूसरी ओर शान्ति चर्चा, एक ओर कर्ममार्ग है तो दूसरी ओर ज्ञान मार्ग, एक ओर दुर्योधन जैसा सहज शत्रु है तो दूसरी ओर युधिष्ठिर जैसा अजातशत्रु, एक ओर भीष्म पितामह जैसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं तो दूसरी ओर शिखण्डी जैसे क्लीब, एक ओर अभिमन्यु जैसा कर्मशूर है तो दूसरी ओर ~~शिखण्डी जैसे क्लीब~~ अश्वत्थामा जैसा वाक्सूर, एक ओर श्रीकृष्ण जैसे योगिराज और नीतिनिपुण हैं तो दूसरी ओर दुःशासन जैसा दुश्चरित्र और नीति-विध्वंसक, एक ओर विदुर जैसे ज्ञानी और पवित्रात्मा हैं तो दूसरी ओर शकुनि जैसे छद्मजीवी, एक ओर भीम जैसा पराक्रमी ~~योद्धा~~ महारथी है तो दूसरी ओर जयद्रथ जैसा कायर। इस प्रकार महाभारत में विरोधी गुणों का समावेश है। इसमें

Scanned with CamScanner

विरूपता में एकरूपता, अनेकता में एकता, विशृंखलता में समन्वय व्यवहार में आदर्श, अशान्ति में शान्ति, प्रेय में श्रेय और धर्मार्थ में मोक्ष का समन्वय है।"

Dhananjay Vasudeo Dwivedi

Scanned with CamScanner